39.

तित्थयर

जैन भवन

वर्ष ६ अंक ८ : दिसम्बर १९८२

बनारसी साड़ी
इण्डियन सिल्क हाउस
कॉलेज स्ट्रीट मार्केट • कलकत्ता-१२

Prakash Trading Company

12 INDIA EXCHANGE PLACE
CALCUTTA-700001

Gram: PEARLMOON

Telephone : 22-4110
22-3323

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :

4 Mir Bhor Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 33-5969

Branch Office :

The Bikaner Woollen Mills
Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 378

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष ६ : अंक ८

दिसम्बर १९८२

□

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

□

आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

□

प्रकाशक

जैन भवन

पी - २५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००७

□

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७००००७

सूची

महावीर ने कहा था २२६

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र २३३

धातुमय जैन प्रतिमाएँ २४०

अर्द्धकथानक २४४

शब्द-रत्न-महोदधि नामक संस्कृत गुजराती का महान् जैन कोश २५२

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या २५५

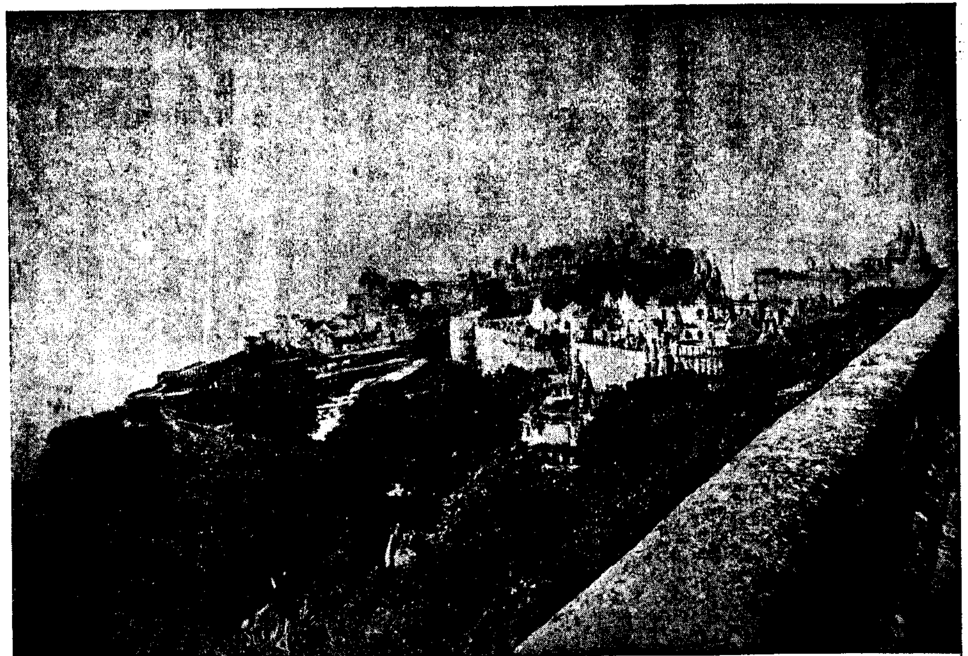

उत्तरी शिखर से शत्रुंजय का दृश्य

महावीर ने कहा था

[पूर्वानुवृत्ति]

धर्म सम्बन्धी

जरा-मरण रूप संसार के प्रवाह में
प्रवाहित जीवों के लिए
धर्म ही एकमात्र
द्वीप, गति, शरण और उत्तम आश्रय है।

जो धर्म परित्याग कर
अधर्म का आश्रय लेते हैं
वे मूर्ख की भाँति काम कर
नरक में उत्पन्न होते हैं।

जो ज्ञानी हैं
वे अधर्म का परित्याग करते हैं
धर्म का आश्रय लेकर
स्वर्ग गमन करते हैं।

जो पथ पर गृह निर्माण करता है
वह अनिश्चित कार्य करता है
अतः गन्तव्य स्थान पर गृह निर्माण करो।

तीन वणिक
मूलधन सहित
वाणिज्य के लिए जाते हैं
एक उपार्जन करता है
दूसरा मूलधन सहित लौटता है,

तीसरा सर्वस्वान्त होकर
मूलधन पर्यन्त खो देता है
जीवन की इसी उपज को
धर्म के सम्बन्ध में भी समझो।

मनुष्य जीवन ही मूल धन है
उपार्जन स्वर्ग
मूलधन खो देना
नरक और तिर्यंच योनि में
उत्पन्न होना है ।

शकट चालक
राजपथ का परित्याग कर
विपथ में जाकर
टूटे हुए चक्के के लिए
जैसे परिताप करता है,

जो धर्म का परित्याग कर
पाप का आश्रय लेता है
मृत्यु आने पर
वह भी उसी प्रकार
परिताप करता है ।

जो दिन व रात्रि चली जाती है
वह लौटकर नहीं आती
जो धर्माचरण करता है
उसके लिए भी वह फलहीन होती है ।

जो दिन व रात्रि चली जाती है
वह लौटकर नहीं आती
जो धर्म में अवस्थान करता है
उसके लिए वह फलप्रद होती है ।

अतः जब तक जरा आक्रमण नहीं करता
व्याधि प्रपीड़ित
इन्द्रियाँ शिथिल नहीं होतीं
तब तक धर्माचरण करो ।

सुखदायी काम भोग
परित्याग कर
जब तुम मृत्यु को प्राप्त होगे
तब एक मात्र धर्म ही
तुम्हें परित्याग नहीं करेगा
और सभी परित्याग कर देंगे ।

ब्राह्मण सम्बन्धी

मस्तक मुण्डन करने से ही
श्रमण नहीं होता
ओम् उच्चारण करने से ही ब्राह्मण
वन में निवास करने से ही
मुनि नहीं होता
वल्कल धारण करने से तापस ।

ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व,
वैश्यत्व व शूद्रत्व
जन्मजात नहीं
कर्मगत होता है ।

मैं उसे ही ब्राह्मण कहता हूँ
जो जीव समुदाय को जानता है,
वह चाहे स्थावर हो या त्रस
मन वचन काया से
वह उनकी हत्या नहीं करता ।

मैं उसे ही ब्राह्मण कहता हूँ
जो क्रोध या परिहास में
लोभ या भय से
झूठ नहीं बोलता ।

मैं उसे ही ब्राह्मण कहता हूँ
जो छोटी या बड़ी
त्रस या स्थावर वस्तु
बिना दिए ग्रहण नहीं करता ।

मैं उसे ही ब्राह्मण कहता हूँ
जो मोह शून्य और अलोलुप है
अनागार और अकिंचन है
और जो गृहस्थ संसर्ग नहीं करता ।

मैं उसे ही ब्राह्मण कहता हूँ
जो नव जातक के आविर्भाव पर
आनन्दित नहीं होता
मृत्यु से शोक ग्रस्त
एवं आर्य वचन ही है जिसका आनन्द ।

मैं उसे ही ब्राह्मण कहता हूँ
जो राग, द्वेष और भय शून्य है
और परीक्षित व अग्निदग्ध
स्वर्ण की भाँति दीप्त है ।

मैं उसे ही ब्राह्मण कहता हूँ
जो जलजात कमल-सा
संसार-सुख भोग में अलिप्त रहता है ।

जिनमें ये गुण हैं
वे ही ब्राह्मण और सर्वोत्तम हैं
संसार में वे अपनी
और अन्य लोगों की रक्षा करने में समर्थ हैं ।

प्राणिमात्र को मैं क्षमा करता हूँ
प्राणिमात्र मुझे क्षमा करें
सर्वभूतों से मेरी मैत्री है
वैर नहीं मेरा किसी के प्रति ।

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

कुछ समय पश्चात् क्षुधा-पिपासा से पीड़ित और तत्त्वज्ञान रहित वे तपस्वी राजागण अपनी बुद्धि के अनुसार विचार करने लगे—प्रभु मीठे फलों को भी किम्पाक फल की तरह नहीं खाते। स्वादिष्ट मीठा जल भी तिक्त जल की भाँति नहीं पीते। शरीर से मन हटाने के लिए स्नान विलेपनादि भी नहीं करते। वस्त्रालंकार और पुष्प को बोझ समझकर धारण नहीं करते किन्तु पवन-वाहित रजकणों को ये पर्वत की भाँति धारण कर लेते हैं और ललाट तप्तकारी ताप को भी मस्तक पर ग्रहण करते हैं। कभी भी सोते नहीं हैं फिर भी क्लान्त नहीं होते। श्रेष्ठ हस्ती की भाँति शीत ग्रीष्म को कुछ समझते ही नहीं हैं। क्षुधा-पिपासा से जैसे अपरिचित हैं। वैर प्रतिरोधकारी क्षत्रियों की भाँति ये रात्रि में भी नींद नहीं लेते। हम तो इनके अनुचर बने हैं किन्तु हम मानो अपराधी हों इस प्रकार ये हमें एक दृष्टि से देखकर भी प्रसन्न करने का प्रयास नहीं करते, बात करना तो दूर रहा। इन्होंने पुत्र कलत्रादि का परित्याग किया है किन्तु हम समझ ही नहीं पा रहे हैं कि फिर ये मन ही मन क्या चिन्तन करते रहते हैं?

इस प्रकार विचार कर वे तपस्वीगण अपने नेताओं और प्रभु के निकट सेवक की भाँति रहने वाले कच्छ महाकच्छ के निकट गए और बोले—'कहाँ क्षुधा पर जय प्राप्त करने वाले प्रभु कहाँ अन्न-कीट से हम। कहाँ पिपासा जयी प्रभु और कहाँ जल निवासी मेंढक से हम। कहाँ शीत विजयी प्रभु और कहाँ बन्दर की भाँति शीत से कम्पायमान हम। कहाँ निद्राहीन प्रभु और कहाँ अजगर से निद्रालु हम। कहाँ धरती पर नहीं बैठने वाले प्रभु और कहाँ आसन बिछाकर पंगु की भाँति बैठे रहने वाले हम। समुद्र लंघनकारी उड़ते हुए गरुड़ का जिस प्रकार काक अनुसरण करता है उसी प्रकार स्वामी परिगृहित व्रत का हम अनुसरण करते हैं। तब क्या आजीविका के लिए अपना राज्य हमें पुनः ग्रहण करना होगा? किन्तु उन राज्यों को तो भरत ने अपने अधिकार में ले लिया है। तो अब हमें क्या करना उचित है? जीवन निर्वाह के लिए क्या हमें भरत का आश्रय लेना होगा? लेकिन स्वामी को परित्याग

करके जाने पर हमको भरत से भी बहुत भय है। हे आर्य, आप सर्वदा प्रभु के निकट रहते हैं। अतः प्रभु के मनोभावों को आप अच्छी तरह जानते हैं। इसलिए दिग्मूढ़ से हमलोगों को क्या करना चाहिए वह बताइए ?'

तब कच्छ और महाकच्छ मुनियों ने उत्तर दिया—यदि स्वयंभूरमण समुद्र का अतिक्रम किया जा सकता हो तो प्रभु के मनोभावों को भी जानना सम्भव हो सकता है। पहले हम प्रभु की आज्ञानुसार चलते थे किन्तु अब प्रभु ने मौन धारण कर लिया है अतः उनके मनोभावों को जिस प्रकार आप भी नहीं जान पाए हम भी नहीं जान पा रहे हैं। हम सब की दशा एक-सी ही है। एतदर्थ आप जैसा कहेंगे हम वैसा ही करेंगे।'

फिर उनलोगों ने परस्पर विचार कर गंगा तटवर्त्ती अरण्य में प्रवेश कर कन्दमूल फलादि का आहार करना प्रारम्भ कर दिया। उस समय से कन्द मूल फलादि का आहार करने वाले वनवासी जटाधारी तपस्वीगण पृथ्वी पर विचरण करने लगे।

कच्छ और महाकच्छ के नमि और विनमि नाम के दो विनयी पुत्र थे। वे प्रभु की आज्ञा से प्रभु की दीक्षा के पूर्व किसी दूर देश चले गए थे। वहाँ से लौटने पर उन्होंने अपने पिता को वन में देखा। उन्हें देखकर वे सोचने लगे वृषभनाथ से नाथ के होते हुए भी इनकी ऐसी दशा क्यों हो गयी ? कहाँ उनके पहनने के वे महीन वस्त्र और कहाँ भीलों के योग्य ये वल्कल ? कहाँ देह में लगाने वाले वे विलेपन और कहाँ पशुओं के तन पर लगने लायक यह धरती की धूल ? कहाँ कुसुमदाम से सुशोभित केश और कहाँ वट वृक्ष की जटा-सी इनकी जटाएँ ? कहाँ हस्ती से वाहन कहाँ पदचारियों की भाँति पैदल चलना ? ऐसा विचार कर वे अपने पिता के पास गए और प्रणाम कर समस्त शंकाओं का उत्तर चाहा। तब कच्छ महाकच्छ ने प्रत्युत्तर देते हुए कहा—'भगवान ऋषभ ने राज्य परित्याग कर एवं पृथ्वी भरतादि पुत्रों के मध्य विभाजित कर प्रव्रज्या ग्रहण कर ली है। हस्ती जिस प्रकार इच्छु को चर्वण करता है उसी प्रकार हम भी साहस कर प्रव्रजित हुए। किन्तु क्षुधा-पिपासा और शीत-ग्रीष्म के ताप से तापित होकर गर्दभ व खच्चर जिस प्रकार अपने बोझ का परित्याग कर देता है उसी प्रकार हमने भी व्रतों का परित्याग कर दिया है। यद्यपि हम प्रभु-सा आचरण करने में समर्थ नहीं हैं फिर भी संसार आश्रम में लौटना नहीं चाहते। इसीलिए इस तपोवन में रहते हैं।'

यह सुनकर वे सोचने लगे—हम भी प्रभु के निकट जाकर अपने भाग के

लिए प्रार्थना करें। वे गए और प्रभु के चरणों में प्रणाम किया। प्रभु उस समय मौनावलम्बन लिए ध्यानावस्थित थे। नमि-विनमि यह नहीं जानते थे कि प्रभु इस समय निःसंग हैं। उन्होंने सब कुछ परित्याग कर दिया है। अतः वे बोले—'हमलोगों को तो आपने दूर देश भेज दिया और समस्त पृथ्वी भरतादि को बाँट दी। हमको तो आपने गाय के खुर जितनी धरती भी नहीं दी। इसलिए हे विश्वनाथ, अब दया कर हमें भूमि दीजिए।' भगवान के प्रत्युत्तर न देने पर वे पुनः बोले—'आप देवों के भी देव हैं। हमारा आपने ऐसा कौन-सा अपराध देखा कि भूमि देना तो दूर मुख से बोलते तक नहीं?' दोनों के इस प्रकार कहने पर भी भगवान ने कोई जवाब नहीं दिया—कारण माया-मोह परित्यागकारी किसी विषय के सम्बन्ध में विचार नहीं करते।

यद्यपि प्रभु कुछ नहीं बोले फिर भी हमारे ये ही सब कुछ है सोचकर वे उनकी सेवा करने लगे। प्रभु की निकटस्थ भूमि धूल रहित रहे इसलिए वे सरोवर से कमल-पत्र में जल लाकर उनके आस-पास की भूमि को सिंचन करने लगे। वे धर्म चक्रवर्ती भगवान के सम्मुख नित्य ऐसे फूल लाकर रखने लगे जिस पर सुगन्ध से मतवाले भ्रमर गूँजते रहते थे। जिस प्रकार सूर्य और चन्द्र रात दिन मेरु पर्वत की सेवा करते हैं उसी प्रकार हाथ में तलवार लेकर वे उनकी सेवा में खड़े रहते और सुबह साँझ दोपहर में करबद्ध होकर प्रणाम करते हुए प्रार्थना करते—"हे प्रभु, हमें राज्य दो। आप ही हमारे एकमात्र स्वामी है।"

एक दिन नागकुमार देवों के अधिपति श्रद्धाशील धरणेन्द्र प्रभु के चरणों की वन्दना करने आए। वे बालकों से सरल दोनों राजपुत्रों को प्रभु से राज्य लक्ष्मी के लिए प्रार्थना और उनकी सेवा करते हुए देखकर आश्चर्य चकित हो गए। धरणेन्द्र ने अमृत से मधुर शब्दों में उनसे पूछा—"तुम लोग कौन हो? भगवान से तुम क्या प्रार्थना करते हो? जब एक वर्ष तक प्रभु ने सबको मनोवांछित दान दिया तब तुम कहाँ थे? इस समय ये ममता रहित परिग्रह रहित हैं। ये तो अपने शरीर तक की ममता से रहित और राग-द्वेष से मुक्त हो गए हैं?"

धरणेन्द्र को प्रभु की सेवा करने वाला जानकर नमि-विनमि ने सादर उन्हें कहा—"ये हमारे स्वामी हैं। हम इनके सेवक हैं। इन्होंने हमें दूर देश भेज कर समस्त राज्य भरतादि पुत्रों में वितरित कर दिया। यद्यपि इन्होंने सब कुछ दे दिया है फिर भी ये हमें राज्य देंगे ऐसा हमारा विश्वास है। सेवक

को तो केवल सेवा करना उचित है। प्रभु के पास कुछ है या नहीं चिन्तन उसके लिए प्रयोजनीय नहीं है।"

धरणेन्द्र बोले—"तुम लोग भरत के पास जाकर प्रार्थना करो। प्रभु के पुत्र होने के कारण वे प्रभु के जैसे ही हैं।"

वे बोले—"निखिल भुवन के प्रभु को प्राप्त करने के पश्चात् अब उनके सिवाय हम किसी को अपना प्रभु नहीं मानेंगे। क्या कभी कल्पवृक्ष को प्राप्त कर कोई कण्टक वृक्ष के पास जाता है? हम परमेश्वर को छोड़कर अन्य से प्रार्थना नहीं करेंगे। चातक पक्षी क्या मेघ के अतिरिक्त किसी अन्य से प्रार्थना करता है? भरतादि का कल्याण हो। आप क्यों उसके लिए चिन्तित हो रहे हैं? हमारे प्रभु जो कुछ दे सकेंगे वे देंगे, दूसरों को इससे क्या मतलब?"

उनके ऐसे युक्तियुक्त वचनों को सुनकर नागराज बहुत प्रसन्न हुए। वे बोले—"मैं पाताल पति धरणेन्द्र, इन प्रभु का सेवक हूँ। मैं तुम्हारा अभिनन्दन करता हूँ। तुमलोग महाभाग्यवान और सत्यवान भी हो। तभी तो तुम्हारी यह दृढ़ प्रतिज्ञा है कि यही एक मात्र सेवा करने योग्य है अन्य नहीं। निखिल भुवन के प्रभु की सेवा करने से राज्य लक्ष्मी तो रज्जुबद्ध कर खींचकर लाने की भाँति सेवक के निकट स्वतः ही उपस्थित हो जाती है। इन महात्मा के सेवक के लिए वैताढ्य पर्वत वासकारी विद्याधरों का आधिपत्य तो करतलगत फल की भाँति अनायास ही लभ्य है। इन प्रभु की सेवा करने पर भुवनाधिपति की सम्पति भी पैरों तले पड़े हुए वैभव की तरह सरलता से प्राप्त हो जाती है। इनकी सेवा करने वालों को व्यन्तर इन्द्र की लक्ष्मी भी वशीभूत होकर इस प्रकार नमस्कार करती है जिस प्रकार इन्द्रजाल से वशीभूत होकर कोई स्त्री करती है। जो भाग्यशाली इन प्रभु की सेवा करता है उसे स्वयं वर-वधू की तरह ज्योतिष्काधिपति की लक्ष्मी वरण करती है। जिस प्रकार बसन्त ऋतु द्वारा विविध प्रकार के पुष्पों की वृद्धि होती है उसी प्रकार इनकी सेवा करने वालों को इन्द्र की सम्पत्ति प्राप्त होती है। मुक्ति की छोटी बहन अहमिन्द्र की लक्ष्मी भी इनकी सेवा करने वाले को तत्काल प्राप्त होती है। इन जगत्पति की सेवा करने वाले को तो मृत्यु रहित आनन्दमय मोक्ष पद भी प्राप्त होता है। अधिक क्या कहूँ, इनकी सेवा करने से इहलोक में इन्हीं की भाँति त्रिभुवन का आधिपत्य और परलोक में सिद्ध गति तक प्राप्त होती है। मैं इन्हीं प्रभु का दास हूँ और तुमलोग भी इनके किंकर हो। अतः प्रभु की सेवा के फलस्वरूप मैं तुम्हें विद्याधरों का ऐश्वर्य दान करता हूँ। यह बात स्मरण रखना यह राज्य तुम्हें प्रभु की सेवा के कारण ही प्राप्त हुआ है। पृथ्वी पर

अरुणोदय सूर्य के द्वारा ही होता है। तत्पश्चात् धरणेन्द्र ने उन्हें गौरी प्रज्ञप्ति आदि अड़तालिस हजार विद्याएँ जो कि पढ़ने मात्र से सिद्ध होती हैं प्रदान की और बोले—"वैताढ्य पर्वत पर जाओ और वहाँ दोनों ओर नगर स्थापित कर अक्षय राज्य करो।"

तब उन्होंने भगवान को नमस्कार किया और विद्याबल से पुष्पक विमान की संरचना कर नागराज सहित उसमें बैठकर वहाँ से प्रस्थान किया। सर्वप्रथम वे अपने पिता कच्छ-महाकच्छ के पास गए और स्वामी सेवा के फलस्वरूप वृक्ष-फल-सी नवीन सम्पत्ति का जो लाभ हुआ वह वर्णित किया। फिर भरत के निकट जाकर अपने वैभव की कथा सुनायी। कारण अभिमानी पुरुष के मान की सिद्धि अपनी वैभवशाली स्थिति को बताने से ही सफल होती है। फिर वे स्वजन-परिजन सहित उत्तम विमान में चढ़कर वैताढ्य पर्वत पर गए।

वैताढ्य पर्वत के प्रान्त भाग को लवण समुद्र की तरंगे चूम रही थीं। वह पर्वत पूर्व और पश्चिम दिशा का मान दण्ड-सा प्रतीत होता था। वह पर्वत उत्तर और दक्षिण भारत के मध्य की मानों सीमा-सा था। वह पर्वत पचास योजन विस्तृत सवा छः योजन पृथ्वी के नीचे निहित था और भू-पृष्ठ से पाँच सौ योजन ऊँचा था। गंगा और सिन्धु नदी इसको विभाजित कर इस प्रकार प्रवाहित होती मानों हिमालय अपनी दोनों भुजाओं को प्रसारित कर उसका आलिंगन कर रहा है। उभय भरतार्द्ध की लक्ष्मी के निवास रूप उस पर्वत में खण्ड प्रभा और तमिश्रा नामक दो गिरि कन्दराएँ थीं। चूलिका से जिस प्रकार मेरु सुशोभित होता है उसी प्रकार शाश्वत प्रतिमाओं सहित सिद्धायतन से वह पर्वत शोभित हो रहा था। उस पर्वत पर कण्ठाभरण तुल्य विविध रत्न-खचित और देवों की लीला स्थली से नौ शिखर थे। उसके बीस योजन ऊपर दक्षिण और उत्तर में वस्त्र-खण्ड की भाँति व्यन्तर देवों की दो निवास श्रेणियाँ थीं। पादमूल से शिखर पर्यन्त रौप्य की मनोहर शिलाएँ थीं जिन्हें देखकर लगता नमि और विनमि को वे हाथ के इशारे से बुला रही हैं। ऐसे पर्वत पर जाकर नमि और विनमि ने अवतरण किया।

नमि राजा ने जमीनसे दस योजन ऊपर दक्षिणार्द्ध में ५० नगरों को पत्तन किया। यथा—बाहुकेतु, पुण्डरीक, हरित्केतु, सेतुकेतु, सर्पारिकेतु, श्री बाहु, श्री गृह, लोहार्गल, अरिंजय, स्वर्गलीला, वज्रागल, वज्रविमोक, महिसारपुर, जयपुर, सुकृतमुखी, चतुर्मुखी, बहुमुखी, रक्ता, विरक्ता, आखण्डलपुर, विलास

योनीपुर, अपराजित, काञ्चिदाम, सुविनय, नभःपुर, क्षेमंकर, सहचिह्नपुर, कुसुमपुरी, संजयती, शक्रपुर, जयन्ती, वैजयन्ती, विजया, क्षेमंकरी, चन्द्रभासपुर, रविभासपुर, सप्तभूतलावास, सुविचित्र, महाघपुर, चित्रकूट, त्रिकूटक, वैश्रवणकूट, शशिपुर, रविपुर, विमुखी वाहिनी, सुमुखी, नित्योद्योतिनी और श्री रथनुपुर चक्रवाल।

किन्नर पुरुषों ने प्रथम वहाँ मंगल गान किया। फिर नमि ने रथनुपुर चक्रवाल नामक सर्वोत्तम नगर में निवास किया। वह नगर सब नगरों के मध्यवर्ती था।

धरणेन्द्र की आज्ञा से विनमि ने भी वैताढ्य पर्वत के उत्तरार्द्ध में साठ नगर बसाए। उनके नाम अर्जुनी, वारुणी, वैर संहारिणी, कैलाशवारुणी, विद्युद्दीप, किलिकिल, चारु चूड़ामणि, चन्द्रभूषण, वंशवत, कुसुमचूल, हंसगर्भ, मेघक, शंकर, लक्ष्मीहर्म्य, चामर, विमल, असुमत्कृत, शिवमन्दिर, वसुमति, सर्वसिद्धस्तुत, सर्वशत्रुंजय, केतुमालांक, इन्द्रकान्त, महानन्दन, अशोक, वीतशोक, विशोकक, सुखालोक, अलक, तिलक, नयस्तिलक, मन्दिर, कुमुदकुन्द, गगनवल्लभ, युवती तिलक, अवनि तिलक, सगन्धर्व, मुक्तहार, अनिमिष, विष्टप, अग्निज्वाला, गुरुज्वाला, श्रीनिकेतनपुर, जयश्री निवास, रत्न कुलिश, वशिष्ठाश्रम, द्रविणजय, सभद्रक, भद्राशयपुर, फेनशिखर, गोक्षीरवर शिखर, वैर्य क्षोम शिखर, गिरिशिखर, धरनी, वारनी, सुदर्शनपुर, दुर्ग, दुर्द्धर, माहेन्द्र, विजय, सुगन्धित सूरत, नागरपुर और रत्नपुर। धरणेन्द्र की आज्ञा से विनमि गगन वल्लभ नगर में निवास करने लगे। यह नगर समस्त नगर के मध्य भाग में अवस्थित था।

विद्याधरों की महावैभवशालिनी दोनों ओर की नगर श्रेणियाँ उसी प्रकार शोभा पा रही थीं जैसे उसके ऊपर व्यन्तर श्रेणी का प्रतिबिम्ब पा रहा था। उन्होंने अन्य अनेक ग्राम-वस्ती एवं उपनगरों की स्थापनाएँ कीं। स्थान और योग्यतानुसार उन्होंने और भी जनपदों के निर्माण किए। जिस-जिस जनपद से लाकर लोगों को वहाँ बसाया गया उन्हीं लोगों के नामानुसार उन जनपदों का नाम रखा गया। समस्त नगर में नमि और विनमि ने जिस प्रकार शरीर में हृदय रहता है उसी प्रकार सभाओं में नाभिनन्दन की मूर्त्तियाँ स्थापित कीं।

विद्याधरगण विद्या के कारण उन्मत्त होकर अविनयी न हो जाएँ इसलिए धरणेन्द्र ने कुछ नियम प्रवर्त्तन किए। विद्या के मद में वे जिनेश्वर, जैन मन्दिर चरमशरीरी और कायोत्सर्ग स्थित मुनियों की अवमानना न करें।

यदि करेंगे तो आलस्य परायण व्यक्ति का जिस प्रकार लक्ष्मी परित्याग कर देती है उसी प्रकार विद्याएँ उनका त्याग कर चली जाएँगी। और जो विद्याधर किसी पति-पत्नी की हत्या करेंगे या किसी स्त्री के साथ उसकी इच्छा के विरुद्ध बलात्कार करेंगे तो उसकी विद्या उसे उसी मुहूर्त्त में त्याग देगी। नागपति ने यह आदेश उच्च स्वर से उन सबको सुनाया और इनको सर्वदा पालनीय बतलाकर रत्नों की दीवारों पर प्रशस्ति की तरह खुदवा दिया। फिर नमि और विनमि को विधिवत् राजा बनाकर एवं अन्य प्रयोजनीय व्यवस्था कर वे वहाँ से लौट गए।

अपनी-अपनी विद्याओं के नाम पर विद्याधरगण सोलह जातियों में विभाजित हो गए। यथा गौरी विद्या वाले गौरेय, मनु विद्या वाले मनुपर्यक, गान्धारी विद्यावाले गान्धार, मानवी विद्या वाले मानव, कौशिकी पूर्व विद्या से कौशिकी पूर्वक, भूमितुण्ड विद्या से भूमि तुण्डक, मूलवीर्य विद्या से मूलवीर्यक, शकुका विद्या से शंकुक, पाण्डुकी विद्या से पाण्डुक, काली विद्या से कालिकेय, खपाकी विद्या से खपाकक, मातंगी विद्या से मातंग, पार्वती विद्या से पार्वत, वंश शालया विद्या वाले वंशोलय, पांशुमूला विद्यावाले पांशुमूलक और वृक्ष मूला विद्यावाले वृक्ष-मूलक कहलाए।

इन्हें भी दो भागों में विभाजित किया गया। आठ जाति के विद्याधर नमि के और शेष आठ जाति वाले विनमि के राज्य में निवास करने लगे। अपनी-अपनी जाति में अपने-अपने शरीर की भाँति उन्होंने एक-एक विद्याधीश्वर देवता की स्थापना की। सर्वदा भगवान ऋषभ की पूजा कर धर्म को जिससे हानि न हो इस प्रकार देवताओं की ही तरह भोग उपभोग करने लगे मानो नमि और विनमि दूसरे शक्र और ईशानेन्द्र ही हों। इस प्रकार कभी जम्बूद्वीप के पर्वत शिखर पर कान्ताओं के साथ क्रीड़ा करते कभी सुमेरु पर्वत के नन्दन आदि वन में पवन की भाँति इच्छा पूर्वक आनन्द विहार करते, कभी यह सोचकर कि श्रावक होने के कारण ही वे इस सम्पत्ति के अधिकारी हुए हैं नन्दीश्वर आदि तीर्थों में शाश्वत जिन प्रतिमाओं की पूजा करने जाते। कभी विदेहादि क्षेत्रों में जाकर अर्हत् भगवान के समोसरण में प्रभु की अमृत वाणी का पान करते। कभी हरिण जिस प्रकार कान ऊँचा कर गाना सुनता है उसी प्रकार चारण मुनियों की धर्म देशना सुनते। सम्यक्त्व और अक्षय भण्डार के अधिकारी वे विद्याधरों के द्वारा परिवृत होकर अर्थ धर्म काम की क्षति न हो इस प्रकार राज्य करने लगे। [क्रमशः

धातुमय जैन प्रतिमाएँ

श्री भँवरलाल नाहटा

[पूर्वानुवृत्ति]

अहमदाबाद की प्रतिमा

अहमदाबाद के वाघण पोल स्थित अजितनाथ जिनालय की धातुमय कायोत्सर्ग मुद्रा की विशाल जिनप्रतिमा पिण्डवाड़ा शैली की परम्परागत अनुकृति है। यह सरल परिकर वाली आकर्षक प्रतिमा है जिसके उभय पक्ष में चामरधारी अवस्थित हैं और एक साधु व एक श्रावक चैत्य वन्दन करते हुए बैठे हैं। इस पर सं० ११११ का अभिलेख भी उत्कीर्णित है।

दिल्ली की पार्श्वनाथ प्रतिमा

पिण्डवाड़ा शैली से प्रभावित एक अत्यंत सुन्दर कलापूर्ण प्रतिमा दिल्ली के चिराखाने के पार्श्वनाथ जिनालय में है। इस प्रतिमा के पृष्ठ भाग में एक अभिलेख भी उत्कीर्णित है जिससे इसका निर्माण काल आठवीं-नवीं शती प्रतीत होता है। इस प्रतिमा की सुन्दर लक्षण शैली आज की-सी बनी हुई प्रतीत होती है। महावीर स्वामी की यह प्रतिमा वि० सं० १६०५ की बनी हुई है और महातीर्थ सम्मेतशिखर पर खरतरगच्छाचार्यों द्वारा प्रतिष्ठित है। पर इसकी भी शैलीगत विशेषता है। चतुष्कोण समवशरण के आसन पर भ० महावीर विराजित हैं और उनके चारों कोणों में सिंह खड़े हुए हैं। इन चारों कोणों में चार गणधर प्रतिमाएँ भगवान को वंदन करती हुई अवस्थित हैं जिनके पृष्ठ भाग में व्यक्त, मण्डित, मौर्यपुत्र और अकम्पित नाम खुदे हुये हैं।

प्रभास पाटण (गुजरात)

यहाँ के सुविधिनाथ जिनालय में श्री आदिनाथ भगवान की कायोत्सर्ग मुद्रा की प्रतिमा है जो किसी विशाल परिकर के बाजू की प्रतीत होती है। इसके निम्न भाग में दाहिनी ओर शासन देवी श्री चक्रेश्वरी और वाम पार्श्व में अम्बिका की खड़ी मूर्ति है जिसके दाहिने हाथ में आम्रलुंब और वाम हाथ में बालक को लिये हुये है। अम्बिका की प्रतिमा पूर्व काल में नेमिनाथ भगवान की अधिष्ठात्री होने पर भी तीर्थंकरों के जिन मन्दिरों में, परिकरों में पायी जाती है। खड़ी प्रतिमाएँ यद्यपि अल्प

ही मिलती है फिर भी बंगाल के शिल्प में देखी जाती है। चक्रेश्वरी की प्रतिमा के दो हाथों में चक्र एवं तीसरे में माला व चौथे में शंख धारण किया हुआ है। नीचे गरुड़ का वाहन है जो कमल पुष्प पर अवस्थित है। अम्बिका देवी की अन्य धातु प्रतिमा सं० १५०६ की प्रतिष्ठित है।

दीवचन्द्र

यहाँ के मन्दिर में लक्ष्मी देवी की दो धातु प्रतिमाएँ हैं जो परिकर में विराजित हैं। दोनों प्रतिमाओं के उभय पक्ष में गजराज अभिषेक करते हुये दिखाये गए हैं। एक के पाद पीठ में भी हाथी का वाहन दिखाया है। एक प्रतिमा पद्मासन में और दूसरी दाहिना गोडा नीचा किये भद्रासन पर विराजित है। पार्श्वयक्ष की प्रतिमा भी पाद पीठ पर विराजित है और दोनों हाथों को गोद में रख कर बैठे हैं। इनके उभय पक्ष में नाग है।

बीकानेर की जैन प्रतिमाएँ

बीकानेर से ७० मील दूरी पर अमरसर के टीलों में सं० २०१३ में सोलह प्रतिमाएँ निकली थीं जिनमें २ पाषाणमय व १४ धातुमय थीं। वे अभी गंगा गोल्डन जुबिली म्यूजियम में प्रदर्शित हैं। इनका परिचय इस प्रकार है —

१. **पार्श्वनाथ त्रितीर्थी**—यह सप्तफणमण्डित त्रितीर्थी परिकर युक्त प्रतिमा सं० ११०४ की प्रतिष्ठित है। भगवान के पृष्ठ भाग से आये हुये साँप का शरीर चौकड़ी युक्त है और फणावली के पीछे भी प्रतिहार्याकृति और सिर पर छत्र है। उभय पक्ष में लम्ब गोलाकृति चक्र के मध्य छत्र के नीचे कायोत्सर्ग मुद्रा में प्रतिमाएँ हैं जिनकी धोती के चिह्न स्पष्ट हैं। छत्र के ऊपरी भाग में पत्ते दिखाई देते हैं। निम्न भाग में यक्ष-यक्षिणी एवं उभय पक्ष में चामर धारी हैं जिनके पृष्ठ भाग में पत्ते की भाँति तीखे आकार के आधार हैं। प्रभु के आसन के नीचे सिंह और दोनों तरफ पाये हैं। मध्य भाग में गुप्तोत्तर कालीन वस्त्र लटकता दिखाया है और नीचे नौ ग्रह बने हुये हैं।

२. **त्रितीर्थी प्रतिमा**—यह सं० ११२७ की प्रतिष्ठित और उपकेश गच्छ के श्रावक आम्रदेव कारित है। भगवान के पृष्ठ भाग में अलंकृत प्रभामण्डल सिर पर छत्र और ऊपरी भाग में किन्नर हैं। उभय पक्ष की खड्गासन प्रतिमाएँ धोती पहनी हुई हैं और उनके पास चामर धारी खड़े हैं। काउसग्गियों के नीचे यक्ष-यक्षिणी एवं तन्निम्न भाग में नौ ग्रह हैं। सिंहासन के पायों के पास सिंह और बीच के वस्त्र चिन्ह के आगे धर्मचक्र है।

३. चतुर्विंशति पट्ट—छत्र के नीचे विराजित मूलनायक प्रतिमा के उभय पक्ष में खड़े धोती पहने काउसग्गियों के ऊपर पद्मासन मुद्रा में जिनेश्वर और नीचे की ओर यक्ष-यक्षिणी हैं। पायेदार सिंहासन के मध्य लटकते वस्त्र के दोनों ओर सिंह और सिंहासन के पाये हैं। निम्न भाग में नौ ग्रह की पंक्ति है। परिकर के दोनों ओर तोरण के स्तम्भ में चार-चार जिन प्रतिमाएँ और ऊपर के कक्ष में तोरण पर दोनों ओर एक पद्मासन और दो-दो खड्गासन मुद्रा की प्रतिमाएँ हैं। प्रतिमा के उभय पक्ष में अलंकृत स्तंभ और मकर मुख प्रतीत होते हैं। सं० ११३६ में अक्षिका श्राविका द्वारा निर्मापित है।

४. पार्श्वनाथ पंचतीर्थी—यह प्रतिमा सं० ११६० में कच्चपुरीय गच्छ के मनोरथाचार्य द्वारा प्रतिष्ठित है। सप्त फण मण्डित पार्श्वनाथ के बगल में खड़े धोती पहने खड्गासन प्रतिमाओं के ऊपर पद्मासन प्रतिमाएँ हैं। सिंहासन के चारों पायों के बीच दोनों सिंह बैठे हैं और उभय पक्ष में चामर धारी खड़े हैं।

५. आदिनाथ पंचतीर्थी—यह प्रतिमा सं० १०६३ में प्रतिष्ठित और कलापूर्ण है। भगवान की प्रतिमाओं के उभय पक्ष में खड्गासन प्रतिमाएँ धोती युक्त और पृष्ठ भाग में अलंकृत भामण्डल है। पृष्ठ भाग के तोरण स्तम्भ पर दो पद्मासन प्रतिमाएँ और बगल में सिंह और मकर मुख है। सिंहासन के मध्य भाग में वस्त्र लटक रहा है, धर्म चक्र भी है। दोनों ओर सिंह और दो पाये हैं। सिंहासन के दोनो ओर यक्ष-यक्षिणी एवं नीचे चैत्यवंदन करते भक्त युगल के मध्य में नौ ग्रह स्थापित हैं।

६. देवी प्रतिमा—यह अश्वारूढ़ देवी की प्रतिमा सं० १११२ में छाहड़ द्वारा निर्मापित है। देवी चारों हाथों में आयुध धारण किये है, घोड़ा चौकी पर खड़ा है।

७ सप्तफणा पार्श्वनाथ—यह प्रतिमा सप्तफण युक्त पार्श्वनाथ भगवान की किसी श्राविका द्वारा निर्मापित है और कमलासन पर विराजमान है। तोरण स्तम्भ के सहारे पृष्ठ भाग में धर्म चक्र और ऊँचे शिखर की भाँति कलश है।

८. पार्श्वनाथ—यह डमरू आकार के कमलासन पर विराजित भगवान की सप्तफण मंडित प्रतिमा है। उभय पक्ष में त्रियष्ठि स्तंभ और पृष्ठ भाग से सांप आकर गोडों के पास से ऊपर गया है। दोनों ओर के साँप कुण्डली कृत न होकर पृथक प्रतीत होते हैं।

९. **आदिनाथ पंचतीर्थी**—सिंहासन के उभय पक्ष में यक्ष-यक्षिणी, दोनों ओर चामरधारी के मध्य में दो काउसग्गिया और ऊपर पद्मासनस्थ प्रतिमाएँ हैं। मध्यवर्ती आदिनाथ भगवान के मस्तक पर छत्र, पृष्ठ भाग में प्रभामण्डल और उभय पक्ष में किन्नर हैं।

१०. **पार्श्वनाथ त्रितीर्थी**—स्पष्ट लक्षण कला वाली इस प्रतिमा के पृष्ठ भाग में ऊँची सप्त फणावली और उभय पक्ष में धोती पहने हुये खड्गासन प्रतिमाएँ हैं। भगवान के नीचे पब्बासन और तन्निम्न भागवर्ती कमल की पँखुड़ियों के नीचे वस्त्र लटकता हुआ उभय पक्ष स्थित सिंहों के मध्य दिखाया है। दाहिनी ओर यक्ष व वाम पार्श्व में अंबिका देवी विराजित हैं। मध्यवर्ती धर्मचक्र के आगे कमल पर यक्ष बैठा है।

११. **पार्श्वनाथ त्रितीर्थी**—यह प्रतिमा भी सप्तफण मण्डित है और सिंहों के ऊपर लटकते वस्त्र वाले पब्बासन पर विराजमान है। उभय पक्ष में धोती पहनी प्रतिमाएँ और ऊपर छत्र लगा हुआ है। निम्न भाग में दाहिनी ओर यक्ष व वाम पार्श्व में अम्बिका देवी अलंकृत टोडी पर कमलासनस्थ है। यह प्रतिमा दुर्गराज कृत स्नात्र प्रतिमा हो सकती है।

१२. **पार्श्वनाथ त्रितीर्थी**—यह प्रतिमा सप्त फणोपरि पट्टिका और कलश युक्त है। सिंहासन के वस्त्र, उभय काउसग्गियों के पास स्तम्भ व निम्न भाग में नौ ग्रह हैं।

१३. **समवशरण प्रतिमा**—यह चौमुख शिखरबद्ध प्रतिमा भी देवालय जैसी लगती है, सभी प्रतिमाएँ राजस्थानी शिल्प कला से अनुप्राणित है।

इन प्रतिमाओं के साथ एक अत्यन्त सुन्दर कला पूर्ण स्त्री मूर्ति प्राप्त हुई है जो त्रिस्तरीय कमलासन पर अपनी लचीली देह यष्टि को किञ्चित् दाहिनी ओर किये खड़ी है। इसके पैरों में नुपूर हाथ में दोनों ओर बंगड़ियों के बीच चूड़ियाँ पहनी हुई हैं। साड़ी की धारियाँ बहुत ही सुन्दर हैं और उत्तरीय को भुजबन्द के पास से कलात्मक ढंग से मोड़कर नीचे गोड़ों तक लहराता दिखाया है। त्रिवलीदार गले के नीचे हार और तिलड़ी नाभि के ऊपर तक पहनी हुई है। मुद्रा की भाँति बड़े कर्णफूल सुशोभित हैं। यह प्रतिमा प्राचीन राजस्थानी कला का प्रतिनिधित्व करने वाली भाव-भंगिमा युक्त अद्भुत एवं सुन्दर है।

[क्रमशः

अर्द्ध कथानक

बनारसी दास

[पूर्वानुवृत्ति]

बन्धु-बान्धव के अनुरोध पर हीरानन्द जी चार दिन जौनपुर में रहे। पाँचवें दिन उन्होंने गोमती नदी पार कर नदी के किनारे ही एक विशाल मैदान में तम्बू गड़वाए। दूसरे दिन उन्होंने प्रयाग की यात्रा की एवं अन्य यात्रीगण अपनी-अपनी इच्छानुसार घर लौट गए। जिस प्रकार नदी के आर-पार जाने के लिए लोग नौका में मिलते हैं एवं फिर अपने-अपने घर की राह पकड़ते हैं उसी प्रकार सब ने एक दूसरे से विदा ली।

कुछ दिनों में पिताजी स्वस्थ हो गए। फिर पूर्व से आनन्दमय दिन लौट आए। यद्यपि आनन्द के साथ कुछ न कुछ दुःख तो रहता ही है!

मेरे एक लड़का हुआ वह भी कुछ ही दिनों में मर गया।

विक्रम सम्वत् १६६२ में (१६०५ खृ०) वर्षाकाल शेष होने पर कार्त्तिक मास में सम्राट अकबर मर गए। यह संवाद विद्युत गति से चारों ओर फैल गया। जौनपुर भी वह खबर आयी। लोग उनके अभाव में स्वयं को पितृ-हीन से असहाय समझने लगे। चारों ओर आतंक फैल गया। भविष्य की चिन्ता में मनुष्य चिन्तित हो गया।

यह भयंकर संवाद जब मैंने सुना उस समय मैं घर की सीढ़ी पर बैठा था। उस खबर ने मुझे हतज्ञान-सा कर दिया। एक भयंकर आवेग में मैं थर-थर काँपने लगा। माथा चक्कर खाने लगा। खुद के भार का सन्तुलन न रहने के कारण मूर्च्छित होकर नीचे आ गिरा। पत्थर की जमीन होने के कारण माथे में चोट लगी और इतना रक्त गिरा कि वहाँ की जमीन ही लाल हो गयी। उस समय वहाँ जो थे वे मेरी सहायता को दौड़े। मेरे माता-पिता की तो उस समय की स्थिति वर्णनातीत थी। मेरी माँ मेरा माथा गोद में लेकर बैठी। रक्त बन्द करने के लिए फटा कपड़ा जलाकर क्षत स्थान पर रखा फिर शीघ्र ही मुझे बिछौने पर सुला दिया। माँ पास बैठकर रोने लगी।

समस्त शहर आतंकित हो उठा था। लोगों ने भय से घर के दरवाजे बंद कर लिए, दुकानों पर साँकलें चढ़ा दीं। जो धनी थे उन्होंने हीरे जवाहिरात

और दामी पोशाकें धरती मे गाड़कर छिपा दीं। बहुत से अपना धन-दौलत गाड़ी में लादकर निर्जन-निरापद स्थान पर जाने लगे। प्रत्येक गृहस्थ घर पर अस्त्र-शस्त्र संग्रह करने लगे। धनी लोग गरीबों की तरह मोटे वस्त्र पहनने लगे ताकि लोग उनकी अवस्था को नहीं जान सके। बाहर निकलने पर मोटा कम्बल या मोटी सूती चादर ओढ़कर निकलते। स्त्रियों ने गहना पहनना छोड़ दिया और कपड़ें भी मोटे पहनने लगीं। कौन गरीब है कौन धनी वस्त्र देखकर अनुमान लगाना ही कठिन हो गया। चारों ओर आतंक था यद्यपि यह अकारण ही था। उस समय कोई चोर डाकुओं का राज्य थोड़े ही हो गया था।

दस दिनों के पश्चात् जब खबर आयी कि राजधानी में शान्ति है तब उस आतंक की परिसमाप्ति हुई। क्रमशः सब कुछ स्वाभाविक अवस्था में लौट आया। आगरा से जो चिट्ठी आयी उसका संक्षिप्त सार यहाँ देता हूँ—

"५२ वर्ष राज्य करने के पश्चात् सम्वत् १६६२ के कार्त्तिक मास में शाह अकबर मृत्यु को प्राप्त हुए। अकबर शाह के ज्येष्ठ पुत्र शाहजादा सलीम सिंहासन पर आरूढ़ हुए हैं। वे अपने पिताजी की ही तरह आगरा से शासन करेंगे। सलीम ने सुलतान नरुद्दीन जहाँगीर की पदवी धारण की है। देश में उनकी क्षमता अप्रतिद्वन्द्वी और अप्रतिहत है।"

इस संवाद से मनुष्यों ने आतंक रहित होकर नए बादशाह के प्रति सम्मान प्रकट किया।

मैं भी शीघ्र ही स्वस्थ हो गया। मेरे माता-पिता पुनः आनन्दमना हो गए। आतंक का अवसान होने पर हमलोगों ने उत्सव मनाया। दरिद्रों को रोटी-कपड़ा दिया। बन्धु-बान्धव आत्मीय जनों को उपहार दिए।

इन घटनाओं के पश्चात् एक दिन मैं अपनी छत पर बने कमरे में गया और वहाँ एकान्त में बैठकर चिन्तन करने लगा। मेरी श्रद्धा और विश्वास के लिए मन में विभिन्न प्रश्न उठ रहे थे।

मैंने स्वयं से प्रश्न किया मैं शिव का अनन्य भक्त और उपासक था किन्तु जब मैं सीढ़ी से गिरकर बुरी तरह घायल हुआ उस समय शिव कहाँ मेरी रक्षा करने आए? यह बात निरन्तर मुझे काँटे की तरह बींध रही थी अतः मैं शिव पूजा की अवहेलना करने लगा। अब उसमें मुझे आनन्द नहीं था अन्ततः एक दिन उस शिव रूपी शंख को फेंक दिया।

न जाने उस समय मेरा मन कैसा तो हो गया था। मात्र शंख ही नहीं फेंका एक दिन बन्धु-बान्धवों के साथ गोमती नदी के पुल पर घूमने निकला।

उस समय मेरे पास स्व-रचित प्रेम कविताओं की पाण्डुलिपि थी उससे उन्हें पढ़-पढ़कर सुना रहा था। तभी मन में आया मनुष्य यदि एक झूठ भी बोलता है तो नरक यातना सहनी पड़ती है और यहाँ तो मैंने पूरा का पूरा ग्रन्थ ही ऐसा रचा है जिसमें मिथ्या के सिवाय और कुछ है ही नहीं। ओह ! इस पाप से मुझे कैसे मुक्ति मिलेगी ? मैं गोमती के प्रवाह की ओर अपलक देखता रहा। अचानक न जाने क्या मन में हुआ मैंने पल भर में उस पाण्डुलिपि को फालतू कागज की तरह पानी में फेंक दिया। मेरे मित्रों ने मेरा हाथ पकड़ना चाहा किन्तु उसके पूर्व ही वह पाण्डुलिपि गोमती के वक्ष में समा गयी थी। उसके एक-एक पृष्ठ बिखर कर तरंगों के आघात से इधर-उधर प्रवाहित होने लगे। पाण्डुलिपि को फिर से पाना असम्भव था। मेरे मित्र बहुत दुःखी हुए। भाग्य को कोसने के सिवाय अब वे कर ही क्या सकते थे।

मेरे पिता जी उस सम्वाद को पाकर बहुत खुश हुए। मेरा लड़का अच्छी राह की ओर जा रहा है यह उसी का लक्षण है कहकर उन्होंने उल्लास व्यक्त किया और कहा—'लगता है अभी मेरे परिवार को इससे आशा है।'

सचमुच ही मुझमें एक अद्भुत परिवर्तन हो गया था। अब जैसे मैं दूसरा ही कोई आदमी हो गया था। मेरा मन नैतिक और धार्मिक चिन्तन की ओर झुक रहा था। मेरे हृदय में नैतिक और धार्मिक जीवन जीने की प्रबल आकांक्षा पैदा हो गयी थी, फलतः मैंने अपने समस्त व्यसनों का परित्याग कर दिया। ठीक ही तो कहा है कोई भी प्रयत्न मनुष्य को व्यसन मुक्त नहीं कर सकता। संस्कारों का तकाजा भीतर से ही आता है। शिशु जब बड़ा होता है तो शिशु सुलभ क्रिया-कलाप स्वतः ही चले जाते हैं। उसी प्रकार पुण्य कर्म जब उदय में आते हैं तो पाप कर्म स्वयं ही दूर हो जाते है।

जो धर्म मेरा जन्मजात था अब उसी धर्म के प्रति मैं श्रद्धाशील हो गया था। अब सुबह उठकर जो कार्य मैं सबसे पहले करता वह था मन्दिर जाकर जिन दर्शन करना। तीर्थंकरों को वन्दन किए बिना मैं मुँह में जल भी नहीं डालता। हमारे धर्म में जिन चौदह नियमों को पालन करना आवश्यक बताया गया उनका मैं विधिवत् पालन करने लगा। पाप कर्म की निर्जरा के लिए तपस्याएँ करने लगा एवं नित्य सामायिक करने भी बैठता। सामायिक का उद्देश्य ही है संसार से विरक्त होना। मैंने हरी सब्जियों में भी उनका परित्याग किया जिन्हें खाना हमारे धर्म में निषेध है। बैंगन आदि अभक्ष्य पदार्थों को तो मैंने जीवन पर्यन्त के लिए छोड़ दिया। पर्युषण पर्व के आठ दिनों में विशेष रूप से तीर्थंकरों की उपासना, भजन-भक्ति करने लगा। बार-

बार उनसे यही प्रार्थना करता "भगवन मुझ पर कृपा करो।" मैं एक सद्‌जैन हो उठा था। अधिक समय धर्मोपदेश सुनने में व्यय करने लगा।

इस रूपान्तर की बात किसने सोची थी? मानव मन की थाह कौन ले सकता है? कोई नहीं कह सकता अगले क्षण ही वह किस पथ का राही होगा। कल तक मैं सबकी निगाहों में एक चरित्रहीन व्यक्ति था। आज सब मेरी प्रशंसा करने लगे।

१६६४ सम्वत् के पूर्व जो कुछ घटित हुआ अब मैं उसका वर्णन संक्षेप में करता हूँ।

मेरी दो बहनें थीं, बड़ी का विवाह हो गया था। वह जौनपुर में ही रहती थी। छोटी अविवाहित थी। हम उसके लिए उपयुक्त वर की तलाश में थे। १६६४ के अन्त में उसका विवाह हुआ और वह अपने पति के साथ पटना चली गयी। उसका विवाह बसन्त ऋतु के फाल्गुन मास में हुआ था।

इसी वर्ष मेरे एक और लड़का हुआ किन्तु वह भी कुछ ही दिनों में चल बसा।

शुक पक्षी की भाँति,
वह उड़ गया।
उसकी चेतनाहीन देह,
सूने पिंजरे की तरह
पड़ी रह गयी।

बाद के तीन वर्ष प्रायः घटना रहित थे। दुःख-सुख मिला समय व्यतीत होने लगा। मैं धार्मिक और सद्-जीवन जी रहा था इससे मेरे पिता जी बड़े प्रसन्न थे।

सम्वत् १६६७ में मेरे पिता जी ने मुझे व्यवसाय के लिए आगरा भेजा। उनके पास विक्रय योग्य जो द्रव्य थे उसके अतिरिक्त और भी बहुत-सी वस्तुएँ खरीद कर मुझे आगरा जाने को कहा, और कहा कि जहाँ तक सम्भव हो उतने लाभ पर मैं उन्हें बेचूँ। एक कागज पर उन्होंने सभी वस्तुओं के दाम लिखे, उनका पूर्ण विवरण लिखा। उन्होंने मुझे जो वस्तुएँ दीं उनमें कीमती रत्न थे और रत्न जड़ित आभूषण भी थे। चौबीस माणिक, नौ नीलम, बीस पन्ने तीस अन्य रत्न, चार वस्ता चुन्नी, दो ब्रास्पौंचीट और दो अंगूठी थी। इसके अतिरिक्त बीस मन घी, दो पीपा तेल और बढ़िया जौनपुरी कपड़े भी थे। सबकी कीमत थी दो सौ रुपये। इनमें कुछ वस्तुएँ पिताजी ने अपने रुपयों से लेकर दी और कुछ उधार करके।

सबकुछ एकत्रित कर पिता जी ने मुझे बुलाया और कहा—"अब परिवार का पूर्ण दायित्व तुम्हारे कन्धों पर होने वाला है। अतः इस पण्य द्रव्य को संभाल कर रखना और हम सबों की आवश्यकताओं को स्मरण रख यथा संभव अधिक लाभ करना।" यह कहकर मेरे ललाट पर कुंकुम का तिलक कर आगरे के लिये रवाना कर दिया।

भारी वस्तुओं के लिये भाड़े पर गाड़ी की और कीमती रत्न और आभूषणों को धोती की तह में रखकर इस प्रकार कमर में बाँध लिया जिससे किसी को कुछ ज्ञात नहीं हो सके। जो वणिक गाड़ियाँ लेकर आगरे की तरफ जा रहे थे—मैं भी उन्हीं के साथ हो गया। हमलोगों का सार्थ एक दिन में पाँच कोस की यात्रा करता था। इसी प्रकार यात्रा करते हुये हम इटावा पहुँचे। वहाँ रात्रि यापन का निश्चय कर हमने नगर के बाहर एक चौड़े समतल स्थान में अपनी गाड़ियाँ गोलाकार रूप में रख दीं। देखते-देखते संध्या हो गई। सहसा काले-काले मेघों से आकाश आच्छन्न हो गया, मूसलाधार पानी बरसने लगा। हम सब आश्रय के लिये इधर-उधर दौड़े। मैं काले कम्बल से सर्वांग ढक कर सराय की ओर दौड़ा किन्तु वहाँ रहने की जगह नहीं मिली। दरबार के दो अमीरों ने पूरी सराय पर अधिकार जमा रखा था। वहाँ से भागकर मैं मण्डी की ओर गया। लेकिन वहाँ की दुकानें भी पहले से ही अधिकृत हो चुकी थीं। किसी मकान में कहीं माथा छिपाने की जगह मिल जाए इस उद्देश्य से चारों ओर देखा। पर सभी घरों के दरवाजे बन्द हो चुके थे। थकावट के मारे मैं चूर-चूर हो गया था। किंतु कोई भी आश्रय देने को तैयार नहीं था। एक स्त्री हम पर दया कर स्थान देने को राजी हुई तो उसका पति मोटी लकड़ी लेकर आया और हमें प्रताड़ित कर भगा दिया। रात थी भयंकर ठण्डी। कारण अगहन का महीना था। मेरे पाँव राह के कीचड़ से भारी हो रहे थे।

कहीं स्थान न मिलने के कारण मेरी हालत बड़ी दयनीय हो गयी थी। अधमरा-सा अन्त में नगर के द्वार की ओर बढ़ा। नगर प्रवेश के दरवाजे के बाहर एक छोटी कुटिया में कई पहरेदार बैठे थे। मैं और मेरे दो अन्य जैन साथी उनके पास गये और रात भर के लिये वहाँ आश्रय देने की विनती की। पहरेदारों ने जानना चाहा हम कौन हैं। हमने बताया—"हम वणिक हैं, सार्थ के साथ आये हैं। एक रात के लिए आश्रय खोज रहे हैं।" यह भी कहा कि शहर में हमने सर्वत्र आश्रय का अनुसन्धान किया किंतु कहीं जगह नहीं मिली। हमने अपनी दयनीय स्थिति की ओर भी उनका ध्यान आकृष्ट कर उन्हें दया करने के लिये कहा। पहरेदारों के मन में दया आ गयी—अतः उन्होंने हमें उस

कुटिया में प्रवेश करने की आज्ञा दी। वे बोले—"हमलोग अभी यहाँ से चले जाएँगे, रातभर तुमलोग यहाँ रह सकते हो। सुबह जब चौकीदार आयेगा तब हमें कुछ झंझट का मुकाबला करना होगा। लेकिन बक्शीश देने पर वह झंझट खत्म हो जायेगा। सिर छिपाने की जगह पाने के आनन्द में हमने वह शर्त मान ली। मैं कुछ जल लाया। उस जल से पैरों को स्वच्छ कर अपने गीले कपड़े सूखने के लिये फैला दिए। फिर जमीन पर कुछ बिचाली बिछाकर हम तीनों सो गए। हमारी आँख लगने के पूर्व ही एक मोटा ताजा आदमी कुटिया के दरवाजे पर आ खड़ा हुआ और हमें वहाँ से बाहर जाने के लिये कहने लगा।

क्रोध से चिल्लाकर वह बोल उठा—"तुमलोग यहाँ नहीं रह सकते। यह मेरा घर है। रोज रात को मैं यहाँ खाट डालकर सोता हूँ। तुमलोग इसी समय यदि यहाँ से नहीं हटोगे तो चाबुक मारकर तुम्हें बाहर निकाल दूँगा।"

भयभीत होकर हम सभी उठ बैठे और सामान लपेट कर बाहर आये। किंतु हमारे क्लान्त पैरों की ओर देखकर लगा उसके मन में दया आ गयी अतः हमें भीतर आने को कहा। पहले उसने जमीन पर टाट बिछायी—फिर उस पर अपनी खाट डाली और बोला—"मैं बिना खाट के सो नहीं सकता हूँ अगर तुमलोग चाहो तो खाट के नीचे टाट पर सो सकते हो।"

उस अपमानजनक प्रस्ताव को स्वीकार करने के अतिरिक्त हमारे पास कोई चारा नहीं था। कोई मनुष्य आज तक कर्म फल को नहीं टाल सका तो हम कैसे टाल सकते थे। जैसा कर्म करते हैं वैसा ही फल पाते हैं। सब कुछ तो कर्म के ही अधीन है। हम जो कपड़ा बुनते हैं उसका सूता हमीं तो कातते हैं।

अतः वह आदमी खाट पर सोया था हम तीनों खाट के नीचे। फिर भी हमलोग गहरी नींद सोये। कारण हमलोगों के कम्बल शीत निवारण में समर्थ थे। सुबह होते ही हम उठकर गाड़ियों के निकट आये। उस समय वृष्टि बन्द हो गई थी अतः हमारे सार्थ ने पुनः चलना आरम्भ कर दिया।

अन्ततः हम आगरा पहुँचे। जिस दिन पहुँचे उस दिन भी खूब वर्षा हो रही थी। कीचड़ के कारण रास्ते में फिसलन हो रही थी। साथी सब चले गये थे। मैंने अकेले ही नदी पार की और शहर पहुँचा। कपड़े की गांठें, तेल के पीपे और घी इस पार ही रहे। मैं कहाँ किसके पास रहूँ यही सोच रहा था। मैंने मेरी छोटी बहन के पति बन्दीदास के यहाँ जाना स्थिर किया।

शब्द-रत्न-महोदधि नामक संस्कृत गुजराती का महान् जैन कोश

श्री अगर चंद नाहटा

जैन साहित्य भारत की प्रायः सभी भाषाओं में एवं जीवनोपयोगी विषयों पर रचा गया है। यद्यपि बहुत से ग्रन्थ नष्ट हो चुके हैं फिर भी जैन ज्ञान भण्डारों में जो सुरक्षित रह गये हैं वे बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। व्याकरण और कोश सम्बन्धी जैन साहित्य का कुछ विवरण पार्श्वनाथ शोध संस्थान, वाराणसी से प्रकाशित जैन साहित्य का वृहद् इतिहास, भाग ७ में दिया गया है जो सन् १६६६ से १६८१ के बीच प्रकाशित है। अभी-अभी तेरापंथी सम्प्रदाय के आठवें आचार्य श्री कालुगणि का जन्म शताब्दी महोत्सव छापर में मनाया गया था। इस उपलक्ष में तीन ग्रन्थ और एक स्मारिका प्रकाशित हुई है। इस स्मारिका में कई विद्वानों के निबन्ध जैन व्याकरण और कोश सम्बन्धी ग्रन्थों पर हैं। (१) डा० देवेन्द्र कुमार शास्त्री लिखित संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश की आनुपूर्वी में कोश साहित्य, (२) डा० श्रीमती पुष्पलता जैन लिखित आधुनिक जैन कोश ग्रन्थों का मूल्यांकन और (३) डा० नेमीचन्द जैन (सम्पादक-तीर्थंकर) लिखित उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी के जैन कोशकार और उनके कोशों का मूल्यांकन। इन तीनों निबन्धों में जिस संस्कृत गुजराती के एक महान् कोष का नामोल्लेख तक नहीं हुआ उसी का संक्षिप्त परिचय इस लेख में दिया जा रहा है। यह कोश चालीस वर्ष पहले प्रकाशित हुआ था। पर इसकी जानकारी जब हिन्दी क्षेत्र के बड़े-बड़े विद्वानों को ही नहीं है तो साधारण लोगों की बात ही क्या। यह कोश दो भागों में सेठ भोगीलाल संकल चंद, मंत्री, श्री विजय नीति सुरि वाचनालय, गाँधी रोड, अहमदाबाद द्वारा प्रकाशित किया गया था। इसका पहला भाग वि० सं० १६६४ और दूसरा भाग वि०सं० १६६७ में प्रकाशित हुआ। संस्कृत शब्दों के गुजराती अर्थोंवाला यह कोश २१५३ पृष्ठों में है और एक लाख से भी अधिक संस्कृत शब्द इसमें दिए गए हैं। ऐसे महान् कोश से लाभ उठाना बहुत ही आवश्यक है। प्रचार के लिए इसका मूल्य भी बहुत कम रखा गया था। १६५४ पृष्ठों के सजिल्द प्रथम भाग का मूल्य आठ रुपया एवं १३०० पृष्ठों के दूसरे भाग का मूल्य दस रुपया था।

शब्द रत्न महोदधि कोश के ग्राहक पन्यास मुक्ति विजय जी हैं, जिन्होंने पूज्य आचार्य विजय नीति सूरि से १६६६ के माघ सुदी सप्तमी को दीक्षा ग्रहण की। सम्वत् १६८७ के कार्त्तिक बदी पंचम को गणिपद, कार्त्तिक बदी अष्टम को पन्यास पद से विभूषित हुए। आपने कई वर्षों के अथक परिश्रम के द्वारा अनेकों ग्रन्थों के आधार से यह संस्कृत शब्दों का बड़ा कोश तैयार किया और गुजराती में अर्थ लिखकर गुजराती भाषा की जानकारी के लिए बहुत ही उपयोगी कार्य किया है। पहले शब्द निर्देश फिर लिंग और जाति निर्देश शब्द का विग्रह या मूल प्रकृति और प्रत्यय उसके बाद गुजराती में जितने उसके अर्थ होते हैं लिखे गए हैं। पहले भाग में 'थ' तक के शब्द आये हैं और दूसरे भाग में 'द' से 'ह' तक के शब्द हैं। बारह वर्षों के कड़े परिश्रम का यह सुफल है। कोश का कार्य प्रारम्भ करने के बाद पन्यास जी अस्वस्थ हो गए थे, फिर भी पं० अम्बालाल, पं० गिरजाशंकर का सहयोग लेकर इस काम को पूरा करके ही छोड़ा। यह तत्परता और निष्ठा का ही परिणाम है। प्रथम भाग पर संशोधक का नाम शास्त्री गिरजा प्रसाद, दयाराम छपा है।

संस्कृत के अन्य कोश ग्रन्थों में जैन ग्रन्थों के शब्द बहुत ही कम लिए गए हैं। इसलिए कई बार संस्कृत के जैन ग्रन्थों में प्रयुक्त शब्दों का अर्थ उन कोश ग्रन्थों में नहीं पाया जाता। पर इस कोश को तो मुख्यतया जैन संस्कृत ग्रन्थों के आधार से तैयार किया गया है। यहाँ तक कि केन्द्र प्राकृत जैन शब्दों का भी संस्कृत रूप इसमें ग्रहण कर लिया गया। इसलिए जैनों के लिए तो यह बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ साथ ही जैनेत्तर व्यक्ति या पण्डित जो जैन संस्कृत ग्रन्थों के शब्दों या पारिभाषिक जैन शब्दों का अर्थ जानना चाहें उनके लिये भी यह कोश बहुत ही उपयोगी और महत्व का है। गुजरात के जैन साधु-साध्वी तो इसीलिये इस कोश का अधिक उपयोग करते रहे हैं। जिस तरह प्राकृत हिन्दी का कोश पं० हर गोविन्द दास जी का प्रकाशित हुआ है उसी तरह संस्कृत हिन्दी का कोश भी जैन ग्रन्थों के आधार से अधिक से अधिक शब्दों वाला प्रकाशित कर अल्प मूल्य में सर्व सुलभ कराने की आवश्यकता है।

संस्कृत साहित्य की जैन विद्वानों ने बहुत बड़ी सेवा की है। विविध विषयों की छोटी-मोटी हजारों रचनायें जैन विद्वानों द्वारा रचित संस्कृत में प्राप्त हैं। जैन विद्वानों की संस्कृत भाषा की मौलिक देन यह भी है कि उन्होंने संस्कृत भाषा की सरलता के लिए व्याकरण आदि नियमों में शिथिलता कर

ही साथ ही प्राकृत, देशी और बोल-चाल के शब्दों को भी मूल रूप में या उन्हें संस्कृत का रूप देकर अपनी रचनाओं में प्रयुक्त किया है। जिससे जनसाधारण भी सुगमता से उनकी रचनाओं के भाव को समझ सकें। इसलिए पाश्चात्य विद्वानों ने इसका नाम 'जैन संस्कृत' दे दिया है। जैन संस्कृत ग्रन्थों में ऐसे हजारों शब्द प्रयुक्त हैं जो जैनेतर संस्कृत ग्रन्थों में प्रयुक्त नहीं हुए अतः शब्द कोष की समृद्धि की दृष्टि से जैन संस्कृत साहित्य बहुत ही महत्व का है।

संस्कृत के जैन ग्रन्थों में जो ऐसे शब्द प्रयुक्त हुए हैं उनका संग्रह किया जाना बहुत ही आवश्यक है। इस बात को ध्यान में रखकर प्रबन्ध चिंतामणि प्रबन्ध कोश और पुरातन प्रबन्ध संग्रह इन तीनों प्रकाशित ग्रन्थों में प्रयुक्त ऐसे शब्दों का एक संग्रह ग्रन्थ डा० भोगीलाल साण्डेसरा और जे० पी० ठाकुर ने तैयार किया है जो सन् १९६१ में प्रकाशित हुआ है पर इसकी जानकारी इने गिने व्यक्तियों को ही होगी। इस कोश ग्रन्थ में कौन सा शब्द कहाँ प्रयुक्त हुआ है, इसका संदर्भ क्या है, अर्थ क्या है यह संस्कृत व अंग्रेजी में बतलाया गया है। २४१ पृष्ठों का यह कोश जर्नल आफ दि ओरियन्टल पत्रिका में पहले छपा था। उसके रिप्रिन्ट्स के रूप में केवल २५० प्रतियाँ अलग से निकाल ली गयी थीं। इस तरह के हजारों शब्द अन्य जैन ग्रन्थों में भी मिलते हैं। उनका भी संग्रह किया जाना चाहिए। इस कोष का नाम है—

Lexicographical Studies in Jain Sanskrit

भावनगर के साप्ताहिक जैन पत्र के पर्युषणांक में शब्द रत्न महोदधि के नवीन संस्करण से प्रकाशन की सूचना छपी है। वह संशोधित रूप में तीन या चार भागों में निकलेगा और उसका मूल्य ४००) होगा। प्राकृत के आधुनिक ढंग के कई कोश निकले हैं पर जैन संस्कृत शब्दों का यही एकमात्र कोश है।

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या

कुशल निर्देश ॥ नवम्बर १९८२

इस अंक में है 'श्री सहजानंदघन जी महाराज के मुमुक्षुओं को दिये पत्र' (अनु० भँवरलाल नाहटा), 'अहिंसा के अंचल में विश्वशान्ति' (मुनिश्री चन्द्र प्रभ सागर), 'तंजयउ स्तोत्र हिन्दी पद्यानुवाद' (भँवरलाल नाहटा), 'विचक्षण के चरणों में—चैतन्य के कुछ क्षण' (डा० आर० सी० जैन), 'श्री भद्रंकर विजय जी के पत्रों में प्रेरणा पीयूष' (अनु० भँवरलाल नाहटा), 'विश्नोई सम्प्रदाय की एक उल्लेखनीय घटना और जैन धर्म का प्रभाव' (अगरचन्द नाहटा)।

तीर्थंकर ॥ नवम्बर १९८२ ॥ श्री महावीर तीर्थ विशेषांक

संपादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'तीर्थ और तीर्थयात्राएँ' (डा० हुकुमचन्द भारिल्ल), 'तीर्थयात्रा : उद्भव, विकास और विधि' (बलभद्र जैन), 'तीर्थयात्रा : इबारत और फलश्रुति' (कन्हैयालाल सरावगी), 'यह मूर्ति, यह मन्दिर' (ब्र० कुमारी कौशल), 'श्री महावीरजी : अवस्थिति, जनश्रुति, इतिहास' 'श्री महावीर जी, 'अनुत्तरयोगी' और मैं (बातचीत) १' (वीरेन्द्र कुमार जैन, डा० नेमी चन्द जैन), 'असंखय द्वीप समूहों में व्याप्त हो जा महाशतक' (वीरेन्द्र कुमार जैन), 'चाँदनपुर के महावीर / विनती और पद' (अनूपचन्द जैन), 'राजस्थान के जैन ग्रन्थागार और श्री महावीर जी' (डा० प्रेमचन्द राँका), 'महावीर की तीर्थ परम्परा और उसकी सार्थकता' (ज्ञानचन्द बिल्टीवाला), 'चाँदन के बाबा, किरपा के बाबा' (सुरेश सरल), 'चाँदनपुर के श्री महावीर : एक चमत्कारिक सिद्धपीठ' (सावित्री परमार), 'पदयात्रा : साल-दर-साल / जयपुर से श्री महावीर जी' (बुद्धि प्रकाश भास्कर), 'श्री महावीर जी, तब और अब (बातचीत) २' (ज्ञानचन्द्र खिन्दूका / डा० नेमीचन्द जैन), 'राजस्थान के प्रसिद्ध दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र', 'श्री महावीर जी, एक मनोज्ञ राष्ट्रीय तीर्थ स्थल' (कपूर चन्द पाटनी), 'भगवान महावीर और विश्व शान्ति' (डा० निजामुद्दीन), 'जिन मन्दिर : आध्यात्मिक प्रयोगशालाएँ' (एलाचार्य मुनि विद्यानन्द), 'अष्ट द्रव्यों की प्रासंगिकता' (पं० नाथूलाल शास्त्री), 'श्री जैन विद्या संस्थान : एक पवित्र संकल्प' (प्रवीण चन्द्र जैन), 'समणसुत्त चयनिका'

(डा० कमलचन्द सोगानी), 'अन्तिम पृष्ठ : चिन्तन के रूप में खत' (गणेश ललवानी)।

श्रमण || नवम्बर १९८२

इस अंक में है 'महावीर पर्याय' (सुमन्त भद्र), 'भगवान महावीर' (उपाध्याय अमर मुनि), 'तीर्थंकर महावीर का निर्वाण पर्व 'दीपावली : एक समीक्षा' (गणेश प्रसाद जैन), 'उपाध्याय अमर मुनि जी : एक ज्योतिर्मय व्यक्तित्व' (मुनि समदर्शी प्रभाकर), 'आज का युवक धर्म से विमुख क्यों ?' (माणक चन्द पींचा), 'कवि देपाल की अन्य रचनाएँ' (अगरचन्द नाहटा)।

Vol. VI No. 8 : Titthayara : December 1982
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

Hewlett's Mixture
for
Indigestion

DADHA & COMPANY

and

C. J. HEWLETT & SON (India) PVT. LTD.

22 STRAND ROAD

CALCUTTA-700001